विचार बिन्दु

पराधीनता समाज के समस्त मौलिक निमयों के विरुद्ध है। –मान्तेस्क्यु

जनसुनवाई बन रही लोकतंत्र में उलटबांसी जैसी व्यवस्था

भारतीय लोकतंत्र का मूल आधार उसका संविधान है जिसके अनुसार सत्ता का वास्तविक स्त्रोत यहां के नागरिक होते हैं। संविधान के अनुसार जनता अपने प्रतिनिधियों को चुनती है ताकि वे उनकी इच्छाओं, समस्याओं और आकांक्षाओं को शासन-व्यवस्था के जरिये उनके समाधान का प्रयास करें। किंतु वर्तमान समय में जिस प्रकार जन-सुनवाइयों की परंपरा विकसित हो गई है, वह कई बार लोकतंत्र की मूल भावना से उलट प्रतीत होती है। ऐसा लगता है जैसे लोकतंत्र में जनता मालिक न रहकर याचक बन गई है और जनप्रतिनिधि तथा अधिकारी सामंतों की भूमिका में आ गए हैं। यह स्थिति संविधान सम्मत लोकतांत्रिक व्यवस्था का एक प्रकार का शीर्षासन है। परंपरागत सामंती व्यवस्था में राजा सर्वोच्च सत्ता होता था। तत्कालीन समाज में जनता के पास शासन में भागीदारी का कोई अधिकार नहीं था और न कोई स्वतंत्र न्याय व्यवस्था। राजा के बोल ही कानून होते थे। राजा ही न्याय करता था और वही उसकी पालना करवाता था। इसलिए प्रजा के लिए न्याय पाने का एकमात्र रास्ता राजा का रहम-ओ-करम होता था जिसके सामने उसे अपनी फ़रियाद पहुंचाना भी मुश्किल था। ऐसे राजाओं की दंतकथाएं भी बनी जिसमें फ़रियादी सीधे बादशाह के सामने दरबार में जा सकता था या उसे कभी भी पुकार सकता था। लेकिन आधुनिक लोकतंत्र का सिद्धांत इससे बिल्कुल भिन्न है। हमारे यहां एक ऐसा संविधान है जिसमें बराबरी के साथ जनता सर्वोच्च होती है। शासन उसके प्रतिनिधियों द्वारा संचालित होता है और एक स्वतंत्र न्यायपालिका होती है। शासन किसी की मर्जी से नहीं बल्कि संवैधानिक तथा जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा बनाए गए कानूनों के प्रावधानों के अनुसार चलता है। इसीलिए लोकतान्त्रिक व्यवस्था में जनता को केवल शिकायत करने वाला नहीं बल्कि निर्णय प्रक्रिया का भागीदार माना जाता है। संविधान नागरिकों को अनेक अधिकार देता है और राज्य की संस्थाओं को यह जिम्मेदारी देता है कि वे इन अधिकारों की रक्षा करें। इसलिए लोकतंत्र में जनता को अपने अधिकारों के लिए किसी दरबार में जाने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। मगर क्योंकि भारतीय जन-मानस अब भी सामंती सोच व परंपराओं से अपना पिंड नहीं छुड़ा पाया है इसलिए संविधान की प्रतिष्ठा किताबों में रह गई है। लोकतान्त्रिक विधि से चुने गए प्रतिनिधियों को सेवा का नहीं राजसी ताकत का अनुभव होता है। हम भारत के लोग जिन्होंने अपना संविधान अंगीकार किया उसके अनुरूप संवैधानिक सदनों में बैठने वाले विधि-निर्माता होते हैं मगर उन्होंने अपने को आम-जन का नियंता मान लिया है।

वास्तविकता यह है कि आज कई स्थानों पर जन सुनवाई कार्यक्रमों का स्वरूप किसी दरबार जैसा दिखाई देने लगा है। नेता मंच पर बैठे होते हैं, अधिकारी उनके साथ उपस्थित रहते हैं और जनता नीचे खड़ी होकर अपनी समस्याएं सुनाती है। यह दृश्य अनायास ही सामंती व्यवस्था की याद दिलाता है। लोकतंत्र में जहां प्रतिनिधि को जनता का सेवक होना चाहिए, वहां वह मालिक की तरह व्यवहार करता दिखाई देता है। दुर्भाग्य से यह आदत केवल जनप्रतिनिधियों तक सीमित नहीं रही है। प्रशासनिक अधिकारी भी अब नियमित रूप से जन सुनवाई आयोजित करने लगे हैं। जिलाधीश, कलेक्टर, उपखंड अधिकारी या अन्य प्रशासनिक अधिकारी सप्ताह में एक दिन जनता की समस्याएं सुनते हैं। सतही तौर पर यह व्यवस्था सकारात्मक लग सकती है क्योंकि इससे लोगों को अपनी शिकायतें सीधे अधिकारियों तक पहुंचाने का अवसर मिलता है। लेकिन इसके पीछे छिपा संदेश चिंताजनक है। यह मान लिया गया है कि सरकारी तंत्र इतना जटिल और दूरस्थ हो गया है कि आम नागरिक को अपनी समस्या के समाधान के लिए किसी विशेष सुनवाई के दिन की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। प्रशासनिक व्यवस्था का मूल उद्देश्य ही यह है कि नागरिकों की समस्याएं नियमित प्रक्रिया के माध्यम से हल हों। यदि लोगों को अपनी शिकायतों के लिए विशेष जन सुनवाई का सहारा लेना पड़ रहा है, तो इसका अर्थ है कि सामान्य प्रशासनिक तंत्र ठीक से काम नहीं कर रहा। ऐसे में जन सुनवाई समस्या का समाधान नहीं बल्कि उसकी स्वीकारोक्ति बन जाती है।स्थिति तब और अधिक विचित्र हो जाती है जब पुलिस अधिकारी भी जन सुनवाई करने लगते हैं। पुलिस का काम कानून-व्यवस्था बनाए रखना और अपराधों की जांच करना होता है। वह न्यायप्रणाली का हिस्सा होती है। यदि किसी व्यक्ति के साथ अपराध होता है तो उसे सीधे थाने में रिपोर्ट दर्ज कराने का अधिकार है। लेकिन जब लोगों को न्याय पाने के लिए पुलिस अधीक्षक या अन्य वरिष्ठ अधिकारियों की जन सुनवाई का इंतजार करना पड़े, तो यह न्याय प्रणाली की कमजोरी को दर्शाता है। यह संकेत देता है कि सामान्य स्तर पर शिकायतों को किस तरह निपटा जा रहा है। ऐसा सिर्फ लापरवाही, या अक्षमता के कारण नहीं होता। अन्याय बड़े कारण होते हैं, जिसे सब जानते हैं। संविधान ने जन-प्रतिनिधियों और अधिकारियों को अधिकार इसलिए दिए हैं ताकि वे जनता के हित में निर्बाध काम कर सकें। लेकिन जब यह संबंध उलट जाता है, तब सेवक मालिक बन जाता है और मालिक याचक की भूमिका में आ जाता है। इस समस्या का एक कारण राजनीतिक संस्कृति में आया परिवर्तन है। आज राजनीति में जनसेवा की भावना के स्थान पर शक्ति और प्रतिष्ठा की आकांक्षा अधिक दिखाई देती है। कई नेता जन-सुनवाई को जनता से संवाद का माध्यम नहीं बल्कि अपनी लोकप्रियता दिखाने के मंच के रूप में इस्तेमाल करते हैं। मीडिया कवरेज, फोटो और वीडियो के माध्यम से यह संदेश दिया जाता है कि नेता जनता की समस्याएं सुन रहे हैं और तुरंत समाधान कर रहे हैं। लेकिन यह प्रक्रिया केवल प्रतीकात्मक होती है। इसके साथ ही प्रशासनिक तंत्र भी इस संस्कृति को बढ़ावा देने लगा है। अधिकारी जन-सुनवाई के माध्यम से यह दिखाना चाहते हैं कि वे जनता के प्रति संवेदनशील हैं। लेकिन यदि प्रशासनिक व्यवस्था वास्तव में प्रभावी हो, तो अधिकांश समस्याएं कार्यालयों में ही रोजाना हल हो जानी चाहिए। लोकतंत्र की स्वस्थ व्यवस्था में जनता और शासन के बीच संबंध अधिक समानता पर आधारित होना चाहिए। जनप्रतिनिधियों का काम केवल शिकायतें सुनना नहीं बल्कि ऐसी नीतियां बनाना है जिससे समस्याएं उत्पन्न ही न हों। यदि सड़क, पानी, बिजली, शिक्षा या स्वास्थ्य जैसी मूलभूत सुविधाओं के लिए लोगों को बार-बार जन सुनवाई में जाना पड़े तो यह नीति-निर्माण की विफलता को ही दर्शाता है। इसी प्रकार प्रशासनिक अधिकारियों की जिम्मेदारी यह सुनिश्चित करना होती है कि सरकारी योजनाएँ सही ढंग से लागू हों और नागरिकों को समय पर सेवाएं मिलें। अब तो डिजिटल-तकनीक और ई-गवर्नेंस के माध्यम से शिकायतों का समाधान अधिक पारदर्शी और प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। ऑनलाइन शिकायत पोर्टल, हेल्पलाइन और समयबद्ध सेवा कानून जैसे उपाय जनता को बार-बार अधिकारियों के सामने उपस्थित होने की आवश्यकता को कम कर सकते हैं। पुलिस व्यवस्था में बड़े सुधार की आवश्यकता है। यदि प्रत्येक थाने में शिकायतों को गंभीरता से लिया जाए और निष्पक्ष जांच हो, तो लोगों को उच्च अधिकारियों की जन सुनवाई में जाने की आवश्यकता क्यों पड़े? पुलिस और जनता के बीच विश्वास का संबंध बनाना लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए अत्यंत आवश्यक है।

> **यह कहना उचित होगा कि जन सुनवाई का विचार पूरी तरह गलत नहीं है। यदि इसे जनता के साथ संवाद और समस्याओं के त्वरित समाधान के माध्यम के रूप में उपयोग किया जाए, तो यह उपयोगी हो सकता है। लेकिन जब यह व्यवस्था सामंती दरबार की तरह दिखाई देने लगे और जनता को याचक की भूमिका में धकेल दिया जाय, तब यह लोकतंत्र की मूल भावना के विपरीत हो जाती है।**

यह भी महत्वपूर्ण है कि नागरिक स्वयं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हों। लोकतंत्र केवल चुनाव तक सीमित नहीं है। नागरिकों को यह समझना होगा कि वे केवल वोट देने वाले नहीं बल्कि शासन के वास्तविक मालिक हैं। यदि प्रतिनिधि या अधिकारी अपनी जिम्मेदारियों का सही ढंग से पालन नहीं करते, तो जनता को लोकतांत्रिक माध्यमों से उन्हें जवाबदेह बनाना चाहिए। मीडिया और नागरिक समाज की भूमिका भी यहां महत्वपूर्ण हो जाती है। मीडिया को केवल जन सुनवाई के कार्यक्रमों की तस्वीरें दिखाने के बजाय यह सवाल उठाने चाहिए कि आखिर ऐसी स्थिति क्यों उत्पन्न होती है कि जनता को बार-बार अपनी समस्याएं लेकर नेताओं और अधिकारियों के सामने जाना पड़ रहा है। इसी प्रकार सामाजिक संगठनों को भी प्रशासनिक सुधार और पारदर्शिता की मांग उठानी चाहिए। यह कहना उचित होगा कि जन सुनवाई का विचार पूरी तरह गलत नहीं है। यदि इसे जनता के साथ संवाद और समस्याओं के त्वरित समाधान के माध्यम के रूप में उपयोग किया जाए, तो यह उपयोगी हो सकता है। लेकिन जब यह व्यवस्था सामंती दरबार की तरह दिखाई देने लगे और जनता को याचक की भूमिका में धकेल दिया जाय, तब यह लोकतंत्र की मूल भावना के विपरीत हो जाती है। लोकतंत्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि सत्ता का व्यवहार कैसा है! यदि सत्ता स्वयं को जनता का सेवक मानती है, और नागरिकों को सम्मान के साथ अधिकार प्रदान करती है, तो लोकतंत्र मजबूत होता है। लेकिन यदि सत्ता स्वयं को मालिक समझने लगे और जनता को अपनी समस्याएं लेकर उसके सामने उपस्थित होना पड़े, तो यह लोकतंत्र के लिए खतरे की घंटी है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम लोकतंत्र की मूल भावना को पुनः याद करें। जनप्रतिनिधि और अधिकारी दोनों को यह समझना होगा कि वे जनता के मालिक नहीं बल्कि सेवक हैं। प्रशासनिक व्यवस्था को इतना प्रभावी और पारदर्शी बनाया जाना चाहिए कि नागरिकों को न्याय और सेवाएं प्राप्त करने के लिए किसी दरबार की आवश्यकता न पड़े। जब तक यह परिवर्तन नहीं होगा, तब तक जन सुनवाई जैसे कार्यक्रम लोकतंत्र की मजबूती के बजाय उसकी विडंबना को ही उजागर करते रहेंगे। लोकतंत्र का वास्तविक अर्थ तभी साकार होगा जब जनता केवल सुनी ही नहीं जाएगी बल्कि शासन की दिशा तय करने में उसकी वास्तविक भागीदारी सुनिश्चित होगी। तभी लोकतंत्र का यह शीर्षासन सीधा खड़ा हो सकेगा और जनता वास्तव में अपने अधिकारों की स्वामी बन सकेगी।

–अतिथि संपादक,
राजेन्द्र बोड़ा
(वरिष्ठ पत्रकार एवं विश्लेषक)

ईरान-अमेरिका टकराव : शक्ति, विचार और जनता के बीच निर्णायक संघर्ष

दोनों देशों के बीच बढ़ता तनाव आज की वैश्विक राजनीति का एक ऐसा केंद्र बन चुका है, जहां सैन्य शक्ति ही नहीं, बल्कि विचारधाराएं, पहचान और शासन की वैधता भी आमने-सामने खड़ी हैं

डॉ. नीरज रावत

ईरान और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच बढ़ता तनाव आज की वैश्विक राजनीति का एक ऐसा केंद्र बन चुका है, जहां केवल सैन्य शक्ति ही नहीं, बल्कि विचारधाराएं, पहचान और शासन की वैधता भी आमने सामने खड़ी हैं। यह संघर्ष सीमाओं तक सीमित नहीं है। यह उस बड़े प्रश्न का हिस्सा है कि इक्कीसवीं सदी की दुनिया किस दिशा में आगे बढ़ेगी। क्या दुनिया नियंत्रण और भय के ढांचे को स्वीकार करेगी, या स्वतंत्रता और लोकतंत्र की ओर निर्णायक कदम बढ़ाएगी।

इस पूरे परिदृश्य में दुनिया की प्रतिक्रियाएं एक जैसी नहीं हैं। एक बड़ा वर्ग इसे इस्लामी एकजुटता के चश्मे से देखता है। उसके लिए ईरान का पश्चिम से टकराव एक प्रकार का सभ्यतागत प्रतिरोध है। शिया और सुन्नी मतभेदों के बावजूद यह भावना कई समाजों में दिखती है कि ईरान पश्चिमी प्रभाव के सामने झुकने से इनकार कर रहा है। यह दृष्टिकोण भावनात्मक रूप से प्रभावशाली जरूर है, लेकिन यह ईरान के भीतर की वास्तविकताओं को पूरी तरह सामने नहीं लाता।

ईरान की असली कहानी उसकी सीमाओं के भीतर लिखी जा रही है। वहां सत्ता का केंद्र केवल निर्वाचित सरकार नहीं है, बल्कि इस्लामिक रिवोल्यूशनरी गार्ड कॉर्प्स यानी आईआरजीसी है, जिसने दशकों में एक समानांतर शक्ति संरचना खड़ी कर ली है। यह संगठन केवल सुरक्षा तंत्र नहीं रहा, बल्कि अर्थव्यवस्था, विदेश नीति और आंतरिक नियंत्रण तक इसका प्रभाव गहराई से फैला हुआ है। यही कारण है कि ईरान के भीतर असंतोष केवल आर्थिक कठिनाइयों का परिणाम नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी व्यवस्था के खिलाफ प्रतिक्रिया है जो नागरिकों की स्वतंत्रता को सीमित करती है।

ईरान की युवा पीढ़ी इस असंतोष का सबसे मुखर चेहरा बनकर उभरी है। शिक्षा, इंटरनेट और वैश्विक संपर्क ने उनके भीतर तुलना की क्षमता पैदा की है। वे जानते हैं कि दुनिया के अन्य हिस्सों में नागरिकों को किस प्रकार के अधिकार प्राप्त हैं, और इसी तुलना ने उनके भीतर बेचैनी को जन्म दिया है। महसा अमिनी की मृत्यु के बाद जो आंदोलन खड़ा हुआ, वह केवल एक घटना की प्रतिक्रिया नहीं था। वह वर्षों से जमा हो रहे गुस्से का विस्फोट था।

इन प्रदर्शनों की विशेषता यह थी कि उन्होंने भय की संस्कृति को खुली चुनौती दी। महिलाओं ने सार्वजनिक रूप से हिजाब कानूनों का विरोध किया। छात्रों ने विश्वविद्यालयों से सड़कों तक अपनी आवाज बुलंद की। कई शहरों में लगातार विरोध देखने को मिला। यह संकेत है कि ईरान के भीतर एक बड़ा वर्ग अब केवल सुधार नहीं, बल्कि संरचनात्मक परिवर्तन चाहता है। यह असंतोष किसी एक वर्ग तक सीमित नहीं है। इसमें महिलाएं, युवा, पेशेवर वर्ग और यहां तक कि पारंपरिक समाज के कुछ हिस्से भी शामिल हो रहे हैं।

ईरानी प्रवासी समुदाय ने इस असंतोष को वैश्विक स्तर पर एक संगठित आवाज दी है। कनाडा, जर्मनी और संयुक्त राज्य अमेरिका में रहने वाले ईरानियों ने लगातार प्रदर्शन कर यह सुनिश्चित किया है कि दुनिया इस मुद्दे को केवल एक भू-राजनीतिक संघर्ष के रूप में न देखे, बल्कि इसे मानवाधिकार और स्वतंत्रता के प्रश्न के रूप में भी समझे। यह दबाव धीरे-धीरे अंतरराष्ट्रीय नीति निर्माण को भी प्रभावित कर सकता है।

दूसरी ओर, क्षेत्रीय समीकरण तेजी से बदल रहे हैं। इज़राइल के लिए ईरान एक प्रत्यक्ष सुरक्षा चुनौती बना हुआ है। इस संदर्भ में अब्राहम समझौते जैसे घटनाक्रम यह दिखाते हैं कि मध्य पूर्व की राजनीति अब पुराने ढांचों से बाहर निकल रही है। कई अरब देशों ने अपने रणनीतिक हितों को प्राथमिकता देते हुए नए गठजोड़ बनाए हैं। यह बदलाव संकेत देता है कि भावनात्मक मुद्दों की जगह व्यावहारिक सोच ने ले ली है।

अमेरिका के भीतर भी इस मुद्दे को लेकर स्पष्ट एकरूपता नहीं है। डोनाल्ड ट्रंप के नेतृत्व में जो आक्रामक नीति सामने आई, उसने यह दिखाया कि अमेरिका अपनी शक्ति का खुला प्रदर्शन करने से नहीं हिचकिचाता। कासिम सुलेमानी की हत्या इसी रणनीति का हिस्सा थी। लेकिन इसके साथ ही अमेरिका में एक मजबूत धारणा यह भी है कि लंबे युद्ध देश के हित में नहीं हैं। यही कारण है कि उसकी नीति में आक्रामकता और संयम दोनों साथ साथ दिखाई देते हैं। वैश्विक स्तर पर चीन और रूस इस संघर्ष को एक अवसर के रूप में देख रहे हैं। उनके लिए ईरान एक ऐसा साझेदार है जो अमेरिकी प्रभाव को संतुलित कर सकता है। ईरान-सऊदी अरब समझौता 2023 में चीन की भूमिका इस बात का संकेत है कि आने वाले समय में कूटनीति के केंद्र बदल सकते हैं। दुनिया धीरे-धीरे एक बहुध्रुवीय व्यवस्था की ओर बढ़ रही है, जहां शक्ति का वितरण अधिक जटिल और प्रतिस्पर्धी होगा।

लेकिन इन सभी रणनीतिक और वैचारिक विमर्शों के बीच एक सच्चाई बार बार सामने आती है कि, किसी भी युद्ध का सबसे बड़ा बोझ आम नागरिक उठाते हैं। इतिहास इस बात का गवाह है। इराक युद्ध और सीरियाई गृह युद्ध ने यह स्पष्ट कर दिया कि राजनीतिक निर्णयों की कीमत समाज की सामान्य जनता को चुकानी पड़ती है। घर उजड़ते हैं, अर्थव्यवस्था टूटती है और पीढ़ियां अस्थिरता में जीने को मजबूर होती हैं।

संयुक्त राष्ट्र जैसी संस्थाएं शांति की अपील करती हैं, लेकिन जब महाशक्तियां अपने हितों के अनुसार निर्णय लेती हैं, तो उनकी सीमाएं स्पष्ट हो जाती हैं। ऐसे में यह सवाल और भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्या वैश्विक व्यवस्था केवल शक्ति संतुलन पर आधारित रहेगी, या उसमें मानव मूल्यों के लिए भी जगह होगी।

इस पूरे परिदृश्य में सबसे निर्णायक तत्व ईरान के भीतर का असंतोष है। यदि यह असंतोष संगठित और व्यापक रूप लेता है, तो यह केवल शासन परिवर्तन तक सीमित नहीं रहेगा। यह पूरे क्षेत्र की राजनीति को बदल सकता है। लेकिन इसके विपरीत यह भी संभव है कि बाहरी दबाव के कारण राष्ट्रवाद का उभार हो और वही सत्ता को और अधिक मजबूत कर दे। यही इस संघर्ष की जटिलता है। बाहरी हस्तक्षेप और आंतरिक असंतोष का यह समीकरण भविष्य की दिशा तय करेगा।

भारत जैसे देशों के लिए यह समय केवल संतुलन बनाने का नहीं, बल्कि स्पष्टता दिखाने का भी है। राष्ट्रीय हित सर्वोपरि हैं, लेकिन उन्हें मानवाधिकार और स्वतंत्रता के मूल्यों से अलग नहीं किया जा सकता। ईरान के आम नागरिकों की आकांक्षाएं इस बात का संकेत हैं कि दुनिया के किसी भी हिस्से में लोग सम्मान और स्वतंत्रता के साथ जीना चाहते हैं। यह आकांक्षा सार्वभौमिक है। अंततः यह संघर्ष हमें एक बुनियादी प्रश्न के सामने खड़ा करता है। क्या हम ऐसी दुनिया को स्वीकार करेंगे जहां सत्ता का स्त्रोत भय और नियंत्रण हो, या हम ऐसी व्यवस्था की ओर बढ़ेंगे जहां नागरिकों की आवाज और अधिकार सर्वोपरि हों। किसी भी रूप में थिओक्रेसी (धर्म तंत्र) अंततः व्यक्ति की स्वतंत्रता को सीमित करती है। यह समाज को स्थिरता के नाम पर ठहराव और नियंत्रण की ओर ले जाती है।

आज आवश्यकता केवल युद्ध को रोकने की नहीं है। आवश्यकता एक स्पष्ट वैश्विक दृष्टिकोण की है, जिसमें मानव कल्याण सर्वोच्च हो। लोकतंत्र, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और व्यक्तिगत अधिकार केवल आदर्श नहीं हैं, बल्कि स्थायी शांति और प्रगति की आधारशिला हैं। जहां नागरिकों को बोलने का अधिकार होता है, वहां व्यवस्था स्वयं को सुधारने की क्षमता भी रखती है।

ईरान अमेरिका टकराव केवल दो देशों का विवाद नहीं है। यह उस दिशा का संकेत है जिसमें पूरी दुनिया आगे बढ़ रही है। इस मोड़ पर लिया गया हर निर्णय आने वाले समय की संरचना तय करेगा। यदि दुनिया ने केवल शक्ति और रणनीति को प्राथमिकता दी, तो परिणाम अस्थिरता और संघर्ष ही होगा। लेकिन यदि मानवता, स्वतंत्रता और लोकतंत्र को केंद्र में रखा गया, तो यह संकट एक नए संतुलन और बेहतर व्यवस्था की शुरुआत भी बन सकता है।

अंत में, यह याद रखना होगा कि किसी भी संघर्ष की वास्तविक कसौटी उसकी सैन्य जीत नहीं होती, बल्कि यह होती है कि उसने मानव जीवन की गरिमा को कितना सुरक्षित रखा। यदि इस पूरे विमर्श में आम लोगों की पीड़ा, उनकी स्वतंत्रता और उनके अधिकारों को केंद्र में नहीं रखा गया, तो कोई भी जीत अधूरी ही रहेगी। यही इस समय की सबसे बड़ी सच्चाई है और यही भविष्य की सबसे बड़ी चुनौती भी।

–डॉ. नीरज रावत,
(अंतरराष्ट्रीय विषयों के जानकार)

नक्सलवाद का "लाल आतंक" खत्म : "मोदी 3.0" की सबसे बड़ी उपलब्धि

यह भारत के लोकतंत्र की सफलता, सुरक्षा बलों की वीरता आदि की संयुक्त विजय है

डॉ. योगेश शर्मा

राजनीतिक शक्ति बंदूक की नली से निकलती है। जरा सोचिए, कितना भीषण रहा होगा चीन के माओवाद का यह दर्शन, जो हिंसक सशस्त्र क्रांति को प्रस्तुत करता है और लोकतांत्रिक संस्कृति के ऊपर बंदूक संस्कृति की श्रेष्ठता स्थापित करना चाहता है। दूसरी तरफ भारत की स्वाभाविक लोकतांत्रिक, शांतिपूर्ण और आदर्शवादी संस्कृति है, जो कानून तथा संविधान और वोट के माध्यम से होने वाली शांतिपूर्ण क्रांति की पक्षधर है। परंतु दुर्भाग्यवश, माओवाद का यह खूनी दर्शन 1960 के दशक के अंतिम वर्षों में भारत-विरोधी कुछ निहित स्वार्थी तत्वों के प्रभाव में पश्चिम बंगाल के नक्सलबाड़ी क्षेत्र से प्रारंभ हुआ और इसे 'नक्सलवाद' नाम मिला। नक्सलवाद को उस समय चीन की कम्युनिस्ट क्रांति से वैचारिक प्रेरणा मिली, और चीनी मीडिया ने इसे स्प्रिंग थंडर ओवर इंडिया (भारत में बसंत का तूफान) तक कहा था। नक्सलवाद का हिंसक मार्ग न केवल राज्य की संप्रभुता के लिए चुनौती बना, बल्कि समाज में अस्थिरता और भय का कारण भी बना।

1967 में प्रारंभ हुआ नक्सलवाद छह दशकों तक एक खूनी संघर्ष के रूप में भारत के लगभग 12 राज्यों में फैल गया। चारु मजूमदार, कानू सान्याल जैसे नेतृत्व से गुजरते हुए यह आंदोलन भारत में माओवादी, वामपंथी और चरमपंथी हिंसा का भयानक उदाहरण बन गया। पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखंड, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, ओडिशा और महाराष्ट्र तक इसका प्रभाव रेड कॉरिडोर के रूप में दिखाई देने लगा। रेड कॉरिडोर की अवधारणा के तहत इसने भारत के सशस्त्र बलों और आम नागरिकों दोनों को भारी नुकसान पहुँचाया।

1970 और 1980 के दशक में नक्सलवाद कई संगठनों में विभाजित हो गया, जिनमें पीपुल्स वार ग्रुप (पीडब्ल्यूजी) और माओवादी कम्युनिस्ट सेंटर (एमसीसी) प्रमुख थे। वर्ष 2004 में इन दोनों संगठनों के विलय से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) का गठन हुआ, जिसने नक्सल आंदोलन को एक संगठित और अधिक घातक रूप प्रदान किया। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 2004 से 2014 के बीच नक्सली हिंसा की 16,000 से अधिक घटनाएँ दर्ज हुईं। इस दौरान लगभग 2,000 सुरक्षाकर्मी और 5,000 आम नागरिक मारे गए। छत्तीसगढ़ का बस्तर, दंतेवाड़ा, सुकमा और महाराष्ट्र का गडचिरोली जैसे क्षेत्र नक्सली हमलों के केंद्र बन गए। नक्सलवाद का प्रभाव इतना बढ़ गया कि पुलिस, केंद्रीय बल, अर्धसैनिक बल और राजनेताओं तक की हत्या की जाने लगी। पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने भी नक्सलवाद को देश की आंतरिक सुरक्षा के लिए सबसे बड़ी चुनौती बताया था।

नक्सलवाद को भूमिहीन, आदिवासियों और वंचित वर्ग का मसीहा बताने का एक ढोंग प्रस्तुत किया गया। जल, जमीन और जंगल की लड़ाई के नाम पर इसे वैध ठहराने का प्रयास किया गया। इसने स्वयं को भगवान बिरसा मुंडा और भगत सिंह जैसे महान क्रांतिकारियों से जोड़ने का वैचारिक दुस्साहस भी किया। नक्सलवाद ने जिस प्रकार से छह दशकों का खूनी सफर तय किया, वह इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि यह आंदोलन कहीं से भी कृषक, भूमिहीन या सामाजिक न्याय के आंदोलन की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

गुरिल्ला युद्ध की रणनीति, घात लगाकर किए गए हमले, मारे गए लोगों के मृत शरीरों के साथ अमानवीय व्यवहार और सशस्त्र क्रांति को वैध ठहराने का प्रयास- नक्सलवाद एक संगठित सशस्त्र हिंसक विचारधारा का प्रतीक बन गया। आश्चर्यजनक रूप से एक गंभीर विडंबना यह है कि कुछ बुद्धिजीवी, लेखक व सिनेमा जगत से जुड़े लोग समय-समय पर नक्सलियों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते नजर आए।

2014 के बाद मोदी सरकार ने नक्सलवाद के विरुद्ध एक बहुआयामी रणनीति अपनाई -खुफिया ऑपरेशनों में तेजी, सुरक्षा बलों का आधुनिकीकरण, नोटबंदी के माध्यम से माओवादी फंडिंग पर प्रहार, नक्सली नेटवर्क को ध्वस्त करना, नक्सलियों का आत्मसमर्पण कराना एनआइए और इडी द्वारा संयुक्त कार्रवाई, ड्रोन, सैटेलाइट इमेजिंग, डिजिटल मैपिंग का उपयोग, स्पेशल फोर्स को आधुनिक हथियार उपलब्ध कराना। केंद्र सरकार ने 2017 में समाधान डॉक्ट्रिन (SAMADHAN -स्मार्ट लीडरशिप, एग्रेसिव स्ट्रैटेजी, मोटिवेशन एंड ट्रेनिंग, एक्शनएबल इंटेलिजेंस, डैशबोर्ड-बेस्ड केपीआईज़, हार्नेसिंग टेक्नोलॉजी, एक्शन प्लान फॉर ईच थिएटर, नो एक्सेस टू फाइनेंसिंग) को लागू किया, जिसने नक्सलवाद विरोधी रणनीति को अधिक व्यवस्थित और परिणामोन्मुख बनाया। इसके साथ ही नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में आधारभूत ढांचे का विकास, आत्मसमर्पण और पुनर्वास नीति का प्रभावी क्रियान्वयन। रेड कॉरिडोर में 10,000 किमी से अधिक सड़क निर्माण 8,000 से अधिक मोबाइल टावर स्थापित, शिक्षा, रोजगार, आवास योजनाएँ, आधार, आयुष्मान भारत, पीएम आवास योजना, 250द्द एकलव्य विद्यालय,रेलवे और कौशल विकास। नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में कल्याणकारी योजनाओं का प्रभावी कार्यान्वयन ने स्थानीय जनसंख्या का विश्वास अर्जित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सरकार ने सामाजिक न्याय को केंद्र में रखते हुए कल्याणकारी योजनाओं, और सामाजिक सुरक्षा नीतियों के माध्यम से नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन लाने का प्रयास किया।

इन पहलों ने वंचित वर्गों और आदिवासियों का विश्वास अर्जित किया, जिसके परिणामस्वरूप माओवादी कैडरों की ताकत कमजोर पड़ी और उनके द्वारा फैलाए गए वैचारिक भ्रम तथा झूठ का पर्दाफाश हुआ। इन सबने नक्सलवाद की सामाजिक-आर्थिक जड़ों को कमजोर किया। 2024 में जहाँ 126 जिले नक्सल प्रभावित थे, वहीं 2026 तक यह संख्या घटकर 10 से भी कम रह गई। पिछले वर्षों में कई बड़े नक्सली नेताओं का सफाया हुआ-बसवराज, माधवी हिड़मा, सहदेव सोरेन आदि।

2024 में गृहमंत्री अमित शाह ने घोषणा की थी कि 31 मार्च 2026 तक नक्सलवाद का पूर्णतः सफाया कर दिया जाएगा। संसद के बजट सत्र में 30 मार्च 2026 को लोकसभा में नियम 193 के तहत नक्सलवाद पर चर्चा हुई, जिसमें अमित शाह ने स्पष्ट रूप से कहा कि नक्सलवाद की मूल वजह विकास की मांग नहीं, बल्कि एक विकृत विचारधारा है। गृहमंत्री अमित शाह ने कहा कि देश लाल आतंक से मुक्त हो चुका है और जो हथियार उठाएगा उसे हिसाब चुकाना होगा। 31 मार्च 2026 की डेडलाइन के साथ भारत ने नक्सलवाद से मुक्त होने का लक्ष्य प्राप्त कर लिया-यह मोदी सरकार के तीसरे कार्यकाल (3.0) की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

निस्संदेह, यह भारत के लोकतंत्र की सफलता, सुरक्षा बलों की वीरता, सरकार और आम नागरिकों के विश्वास की संयुक्त विजय है। इस ऐतिहासिक सफलता के लिए भारत की केंद्र सरकार, हमारे सुरक्षा बल और देश के जागरूक नागरिक-सभी स्थायी बधाई के पात्र हैं। केंद्र सरकार की मजबूत इच्छाशक्ति, सुरक्षा बलों के प्रयास और विकास आधारित नीति ने भारत को नक्सलवाद के आतंक से मुक्त कर दिया है।-यह लोकतंत्र, विकास, न्याय और समावेशन की प्रक्रिया की निर्णायक विजय और नए भारत की एक मजबूत तस्वीर है।

–डॉ. योगेश शर्मा,
(लेखक संवैधानिक अध्येता और अंतरराष्ट्रीय मामलों के विशेषज्ञ हैं)।

राशिफल

पंडित अनिल शर्मा

बुधवार 1 अप्रैल, 2026

चैत्र मास, शुक्ल पक्ष, चतुरदशी तिथि, बुधवार, विक्रम संवत 2083, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र सायं 4:18 तक, वृद्धि योग दिन 2:51 तक, वणिज करण प्रातः 7:07 तक, चन्द्रमा आज कन्या राशि में संचार करेगा।

ग्रह स्थितिः सूर्य-मीन, चन्द्रमा-कन्या, मंगल-कुम्भ, बुध-कुम्भ, गुरू-मिथुन, शुक्र-मेष, शनि-मीन, राहु-कुम्भ, केतु-सिंह

आज रवियोग सायं 4:18 तक है। सर्वार्थ सिद्धि योग सायं 4:18 से सूर्योदय तक है। भद्रा प्रातः 7:07 से सायं 7:25 तक रहेगी। आज चान्द्र पूर्णिमा व्रत, मन्वादि है।

श्रेष्ठ चौघड़िया: लाभ-अमृत सूर्योदय से 9:26 तक, शुभ 10:58 से 12:31 तक, चर 3:35 से 5:07 तक, लाभ 5:07 से सूर्यास्त तक।

राहूकालः 12:00 से 1:30 तक। सूर्योदय 6:22, सूर्यास्त 6:40

मेष
परिवार में चल रहे आपसी मतभेद दूर होने लगेंगे। स्वास्थ्य संबंधित चिन्ता दूर होगी। विवादित मामलों से राहत मिल सकती है। अस्त-व्यस्त दिनचर्या में सुधार होगा।

वृष
व्यावसायिक कार्यों पर ध्यान देना ठीक रहेगा। व्यावसायिक कार्य शीघ्रता/सुगमता से बनने लगेंगे। चलते कार्यों में प्रगति होगी। व्यावसायिक आय में वृद्धि होगी। परिवार में सुख-शांति बनी रहेगी।

मिथुन
परिवार में सुख-सुविधाएं बढ़ेगी। सुख-सुविधाओं में वृद्धि हो सकती है। परिवार में महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हो सकते हैं। व्यावसायिक/आर्थिक स्थिति ठीक रहेगी।

कर्क
व्यक्तिगत प्रयासों से महत्वपूर्ण कार्यों में उचित सफलता मिल सकती है। अटके हुए कार्य शीघ्रता/सुगमता से बनने लगेंगे। परिवार में मन को प्रसन्न करने वाले संदेश प्राप्त होंगे। व्यावसायिक सुविधाएं बढ़ेगी।

सिंह
आर्थिक मामलों में संतुलन बना रहेगा। अनावश्यक धन खर्च हो सकता है। व्यावसायिक कार्यों के संबंध में सकारात्मक आश्वासन प्राप्त होंगे। परिवार में उत्सव जैसा माहौल रहेगा।

कन्या
आर्थिक/वित्तीय मामलों के लिए दिन अच्छा रहेगा। आय में वृद्धि होगी। संभावित स्त्रोत से धन प्राप्त होगा। व्यावसायिक अनुबंध प्राप्त होंगे। परिवार में अतिथियों का आगमन बना रहेगा।

तुला
व्यावसायिक खर्चों पर नियंत्रण रखें। नौकरीपेशा व्यक्तियों को भागदौड़ रहेगी। मानसिक तनाव हो सकता है। आज घर-गृहस्थी के खर्चों में अनावश्यक वृद्धि हो सकती है।

वृश्चिक
आर्थिक स्थिति में सुधार होगा। आय में वृद्धि होगी। अटका हुआ धन प्राप्त हो सकता है। व्यावसायिक कार्यों के संबंध में उचित सोच-विचार हो सकता है। परिवार में वाद-विवाद हो सकते हैं।

धनु
व्यावसायिक कार्यों को प्राथमिकता से करने का प्रयास करें। अटके हुए कार्य बनने लगेंगे। चलते कार्यों में प्रगति होगी। आर्थिक स्थिति ठीक रहेगी। परिवार में अतिथियों का आगमन बना रहेगा।

मकर
नवीन कार्यों के संबंध में सकारात्मक आश्वासन प्राप्त होंगे। अटके हुए कार्य बनने लगेंगे। आज शुभ कार्यों में भाग ले सकते हैं। व्यावसायिक सुविधाओं में वृद्धि होगी। उत्सव जैसा माहौल रहेगा।

कुंभ
चन्द्रमा अष्टम भाव में शुभ नहीं है। शुभ कार्यों में व्यवधान हो सकता है। बनते कार्य बिगड़ सकते हैं। आवश्यक कार्यों में विलम्ब हो सकता है। यात्रा टालना ठीक रहेगा।

मीन
परिवार में आपसी सहयोग-समन्वय बना रहेगा, महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हो सकते हैं। आपसी सहयोग से वर्तमान समस्या का समाधान हो सकता है। आज परिवार में मांगलिक कार्य सम्पन्न हो सकते हैं।